ISSN : 2395-4132

THE EXPRESSION

An International Multidisciplinary e-Journal

Bimonthly Refereed & Indexed Open Access e-Journal

The Expression Journal

Impact Factor 6.4

Vol. 11 Issue 6 December 2025

Editor-in-Chief : Dr. Bijender Singh

Email : editor@expressionjournal.com

www.expressionjournal.com

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 6.4)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में महिलाओं की समाज में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन

गिरवर सिंह शेखावत
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर
डॉ० निशा साहनी
सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर

::

शोध सारांश

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य के ऐसे महान कथाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज की वास्तविक समस्याओं को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया। यह शोधपत्र प्रेमचंद के जीवन, साहित्यिक विकास और उनके कथा–साहित्य में निहित सामाजिक चेतना का अध्ययन करता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन, किसानों, श्रमिकों, स्त्रियों और वंचित वर्गों की पीड़ा को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया। उनकी कहानियाँ और उपन्यास सामाजिक अन्याय, शोषण, गरीबी और नैतिक संघर्षों को उजागर करते हैं। अध्ययन में प्रेमचंद की रचनात्मक यात्रा, विचारधारा और हिंदी कथा साहित्य में उनके योगदान को रेखांकित किया गया है। निष्कर्षतः, प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज का दर्पण है और आज भी सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

प्रमुख शब्द

मुंशी प्रेमचंद, हिंदी कथा साहित्य, सामाजिक यथार्थ, ग्रामीण जीवन, सामाजिक चेतना

::

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 6.4)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में महिलाओं की समाज में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन

गिरवर सिंह शेखावत
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर
डॉ0 निशा साहनी
सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर

::

प्रस्तावित शोध की भूमिका

भारतीय पुनर्जागरण की छाया में करवटें बदलते हिन्दुस्तान के उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के एक हिस्से बनारस से अनतिदूर स्थित लमहीं ग्राम में एक मध्यवर्गीय परिवार में मुंशी प्रेमचंद जी का जन्म सम्बत् 1937 (31 जुलाई सन् 1880) में हुआ था। इनके बचपन का नाम धनपत राय तथा पिता का रखा हुआ नाम नबाब राय था। इनको घर में नबाब के नाम से ही सम्बोधित किया जाता था। इनके पिता मुंशी अजायब लाल डाकखाने में क्लर्क थे। माता का नाम आनन्दी देवी था। जब प्रेमचन्द का जन्म हुआ तो इनके पिता को 20 रूपये तनख्वाह मिलती थी। जब दे 7 साल के थे तभी इनकी माता आनन्दी देवी का स्वर्गवास हो गया। माता के निधन के बाद पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। प्रेमचन्द के साथ विमाता का व्यवहार अच्छा नहीं था। जब वे 15 साल के हुए तब उनकी शादी कर दी गयी और 16 साल की अवस्था में आपके पिता का भी देहान्त हो गया। उसके बाद से प्रेमचन्द के ऊपर घर की सारी जिम्मेदारी आ गयी तब वे नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे और उनकी गृहस्थी में दो सौतेले भाई, सौतेली माँ और खुद उनकी स्त्री थीं। क्रिया–कर्मों में साधारण आदमी को किस तरह ठगा जाता है इसका कड़वा अनुभव प्रेमचन्द को लड़कपन में ही हो गया। सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पण्डे–पुरोहितों का कर्मकाण्ड, किसानों और क्लर्कों का दुःखी जीवन– यह सब प्रेमचन्द ने सोलह वर्ष की उम्र में ही

देख लिया था। प्रेमचन्द पाँच वर्ष की आयु में एक मौलवी से घर पर उर्दू–फारसी पढ़ना आरम्भ किया। प्रेमचन्द गाँव में रहते थे और शहर में ट्यूशन करते थे। शहर पढ़ने जाते थे और पाँच मील वापस आकर रात को कुप्पी जलाकर खुद पढ़ने बैठते थे। हाईस्कूल पास करने के बाद कालेज में तभी भर्ती हो सकते थे जब उनकी फीस माफ हो जाय और इसके लिए सिफारिशों की जरूरत थी। इसी समय वे अधिक मेहनत से चूर होकर बीमार पड़ गये और दो हप्ते तक नीम का काढ़ा पीते रहे। बड़ी मुश्किल से वे कालेज में भर्ती हुए और जैसे–तैसे पढ़ाई जारी रखी, लेकिन गणित कमजोर होने के कारण हिसाब में दो बार फेल हुए।

तब इण्टरमीडिएट में गणित ऐच्छिक विषय न था। प्रेमचन्द अब शहर में रहने लगे थे। पाँच रूपये का ट्यूशन किया। एक वकील के लड़के को पढ़ाते थे और उसी के अस्तबल के ऊपर एक कच्ची कोठरी में रहा करते थे। खुद खाना पकाते थे, बर्तन धोते थे और उपन्यास पढ़ते थे। कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने का चस्का शायद उन्हें पहले ही लग चुका था। वे 'नाविल' वगैरा पढ़ा करते थे। पण्डित रतननाथ सरशार का 'फिसानये आजाद' उन्होंने उन्हीं दिनों पढ़ा। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'चन्द्रकान्ता संतति' भी पढ़ा। बंकिम बाबू के उर्दू तर्जुमे भी जितने लाइब्रेरी में मिले सब पढ़ डाले। प्रेमचन्द को पढ़ने का बहुत चाव था। पढ़ने के रास्ते में जितनी ही ज्यादा कठिनाइयाँ आयीं, उतना ही पढ़ने के लिए उनका चाव और बढ़ता गया। ये उपन्यास प्रेमचन्द के दुःखी बचपन के साथी थे। वे मुसीबतों में उन्हें ढांढस बंधाते थे और कुछ देर के लिए उन्हें ट्यूशनों, सौतली माँ और महाजनो की दुनिया से दूर ले जाते थे। इन्हें पढ़ने से उनकी कल्पना शक्ति प्रखर हुई और खुद भी इन्हें लिखने की प्रेरणा मिली।

स्कूल में पढ़ते हुए कर्ज लेने और महाजनों से निगाह बचाने का अनुभव भी प्रेमचन्द को हुआ। एक दर्जी से कपड़े बनवाये थे। जिसके दो–ढाई रूपये की रकम का भुगतान करने में तीन साल लग गये। उनका वह जीवन हिन्दुस्तान के औसत गरीब विद्यार्थी का जीवन था। एक बार महाजन से उधार न मिलने पर सिर्फ रोटी का प्रबन्ध करने के लिए उन्हें अपनी किताबें तक बेचनी पड़ी थीं। अपने आत्मकथात्मक लेख 'जीवन–सार' में यह सन्दर्भ इन शब्दों में प्रेमचन्द ने व्यक्त किया है– "चक्रवर्ती गणित की कुंजी थी। दो साल हुए खरीदी थी। उसे बड़े जतन से रखा था, पर आज चारों आरे से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब 2 रुपये की थी, पर एक रूपये पर सौदा ठीक हुआ। मैं रूपये लेकर दुकान से उतर ही रहा था कि एक सौम्य पुरुष ने जो उस दुकान पर बैठे हुए थे, मुझसे "पूछा– कहाँ पढ़ते हो? वह आदमी चुनार के एक छोटे से मिशन स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्हें मैट्रिक पास एक मास्टर की तलाश थी। वेतन था 18 रूपये। कहने भर की देर थी लपककर मंजूर कर लिया। अठारह रूपये उस समय मेरी व्यथित कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान से ऊपर थे।"

यह सन् 1899 की बात है। प्रेमचन्द के पिता को मरे 2 वर्ष हो रहा था। घर पर बस उनकी नयी माँ और उनका एक तीन साल का बच्चा था। उनकी खेती के हिसाब से खाने वाले ज्यादा थे। घर में भूनी भंग नहीं थी और कमाने वाला अकेला नबाब उन सब के परवरिश की जिम्मेदारी अब नबाब पर ही थी।

नबाब ने अगले रोज सब कुछ पक्का कर लिया और तीन–चार दिन के अन्दर चुनार पहुँच गये। जो मिर्जापुर के पास तथा बनारस से 40 मील दूर था। छोटी जगह थी। मिजाज में कुछ शर्मीलापन था। पढ़ने का चस्का लग ही चुका था। किसी से कुछ ज्यादा मतलब न रखते थे। बस अपने काम से काम।

साथ में नयी माँ के सौतेले छोटे भाई विजय बहादुर भी थे। उम्र में वह नबाब से 4–5 साल छोटे थे। पर दोनों में बहुत बनती थी। विजय बहादुर एक नेक आदमी थे। ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रहे पर जितने दिन रहे नबाब के साथ ही रहे।

वेतन से पूरा न पड़ता था इसलिए नबाब ने एक पांच रूपये का ट्यूशन कर लिया था। लड़का घर आकर पढ़ जाता था। नबाब को अपने पढ़ने–लिखने से फुर्सत न मिलती थी। घर का काम विजय बहादुर के जिम्मे था। महीना खत्म होने से पहले पैसे खत्म हो जाते थे। तभी एक बार नवाब विजय बहादुर के साथ लमहीं (अपने घर) गये। चार–पाँच दिन रहे। चलने लगे तो रास्ते के लिए अपनी सौतेली माँ से रूपये मांगे। उन्होंने इंकार कर दिया। उधार लेते तो किससे? मजबूर होकर अपना गरम कोट बेच दिया जो कि बड़े मुश्किल से बनावाया था। सूती पहन कर उसको जतन से रखा था। उसे 2 रूपये में बेच दिया। इस सबके बाद भी जिन्दगी जैसी थी, बहुत अच्छी थी।

चुनार के मिशन स्कूल से निकलकर मुंशी जी, जिनकी उम्र उस समय 20 साल थी, सालभर के अन्दर ही बनारस पहुँचे और किसी नये काम की तलाश शुरू हुई।

क्वीन्स कालेज में बेकन साहब प्रिन्सिपल थे। वे शिक्षा विभाग में बड़ा असर रखते थे, एक गरीब नौजवान को हीले से लगाना उनके लिए मुश्किल बात न थी। नवाब के बारे में उनका अच्छा ख्याल था। उन्होंने यहाँ–वहाँ एक–दो खत लिखे और मुंशी जी कि नियुक्ति 2 जुलाई 1900 को बहराइच के जिला स्कूल में 5वें मास्टर के पद पर हुई। वेतन बीस रूपये महीना। सरकारी नौकरी का सिलसिला शुरू हुआ।

बहराइच में मुंशी जी को ज्यादा दिन नहीं रहना पड़ा। ढाई महीनें के बाद उनकी बदली प्रतापगढ़ के लिए हो गयी। 21 सितम्बर से उन्होंने प्रतापगढ़ के जिला स्कूल में फर्स्ट एंडीशनल मास्टर का काम संभाला। वेतन वही 20 रूपया, जो घर की जरूरतों के लिए काफी न था। रूपया बराबर घर भेजना पड़ता था। प्रतापगढ़ में मुंशी जी कहीं आते–जाते नहीं थे। घर से स्कूल और स्कूल से घर।

मिलने–जुलने वालों में पहला नम्बर बाबू राधाकृष्ण का था। जो आगे चलकर अवध चीफ कोर्ट के जज हुए। उनकी मुंशी जी से बहुत बनती थी। बाबू राधाकृष्ण साहित्यिक रसिक भी थे।

वे हमेशा अपनी नयी चींजे मुंशी जी को सुनाते रहते थे। मुंशी जी जहाँ ठाकुर साहब की हवेली पर रहते थे, वहीं संस्कृति के पण्डित जयराम शास्त्री भी रहते थे।[1]

पढ़ना–लिखना, यही मुंशी जी की जिन्दगी थी। पढ़ने से ज्यादा वे लिखते थे। लड़कों और उनकी उम्र में बहुत ज्यादा फर्क न था। पर लड़के उनका बड़ा अदब करते और वे भी उनको बड़ी मुहब्बत से पढ़ाते थे।

प्रतापगढ़ में जब तक रहे प्रसन्न थे, संतुष्ट थे, लिखने–पढ़ने में दिन बीत रहे थे। लेकिन अब यहाँ पढ़ने का चस्का न था। बल्कि एक ऐसे आदमी को पढ़ना था जो अपने भीतर थरथरी महसूस कर रहा था। उन्होंने जो कुछ पढ़ा था ज्यादातर राजा–रानी के किस्से थे। पढ़ने में वे बहुत अच्छे थे और लिखना वह और कुछ चाहते थे। इससे दिल बहलाव होता था लेकिन दिन पर दिन समाज की हालत बिगड़ती जा रही थी। उन्होंने सोचा अगर कुछ लिखना ही है तो ऐसा लिखो जिससे समाज का कल्याण हो।

1904 में उन्होंने उर्दू–हिन्दी में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का स्पेशल वर्नाक्यूलर इम्तहान पास किया। इसके बाद में 1905 में ट्रेनिंग कालेज से पढ़ाने की सनद पायी। 1910 में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इण्टर किया और 1919 में अंग्रेजी, इतिहास, फारसी लेकर बी० ए० किया। किन्तु प्रेमचन्द को जहाँ वास्तविक शिक्षा मिली वे विश्वविद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमहीं के किसान, बनारस के महाजन और किताबों के नोट्स बिकवाने वाले बुक सेलर्स थे। भले ही वे गणित पढ़ने योग्य न रहे हों परन्तु वह हिन्दुस्तानी समाज की बीजगणित अच्छी तरह समझ गये थे और अपने उपन्यासों में बहुत से प्रश्न हल करने की तैयारी भी कर चुके थे।

प्रेमचन्द ने गरीब विद्यार्थी की जिन्दगी देखी तो, गरीब अध्यापक की भी जिंदगी अच्छी तरह से देखी। गोरखपुर, कानपुर, बनारस आदि कई जगह रहकर प्रेमचन्द ने अध्यापन कार्य किया। वह अपने में मस्त और शिष्यों से प्रेम करने वाले शिक्षक थे। वे हेडमास्टरों, इंस्पेक्टरों वगैरह की परवाह न करते थे।

प्रेमचन्द ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सब–इंस्पेक्टर की हैसियत से छः साल महोबा में बिताये और तीन साल तक बस्ती में मास्टरी की। इन दो जगहों का रहना उनके जीवन में काफी महत्व रखता है। उन्हें पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्द प्रदेश का, जहाँ की जनता बेहद गरीब है, अच्छा ज्ञान हो गया। इसीलिए जब प्रेमचंद पाण्डेयपुर के किसानों का चित्रण करते हैं तो हम उसमें समूचे हिन्द प्रदेश के गरीब किसानों का दर्शन करते हैं।

प्रस्तावित शोध के सोपान

प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन एक उपन्यासकार और आलोचक की हैसियत से शुरू किया था। प्रेमचन्द ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं के बारे में लिखा है कि 1901 में उन्होंने उपन्यास लिखना शुरू किया था। उनका एक उपन्यास 1901 में तथा दूसरा 1904 में प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द ने रवीन्द्रनाथ की कई कहानियों को पढ़ा तथा उसका अनुवाद भी किया था और खुद उन्होंने 1907 से कहानियाँ लिखना शुरू किया। उनकी शुरु की कहानियाँ 'जमाना' में छपीं। उनकी पहली कहानी का नाम 'दुनियाँ का सबसे अनमोल रत्न' था। उसके बाद प्रेमचन्द ने 'जमाना' में चार–पाँच कहानियाँ और लिखीं।

1909 में पाँच कहानियों का मजमूआ (संकलन) 'सोजेवतन' के नाम से 'जमाना' प्रेस कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की पाँच कहानियों से अंग्रेज शासक घबरा उठे। वे जानते थे कि युद्ध की तैयारियों का असर हिन्दुस्तान पर क्या पड़ेगा। नतीजा यह होगा कि यहाँ का स्वाधीनता आन्दोलन और भी तेजी से आगे बढ़ेगा। अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए वे यहाँ के जन–आन्दोलन को ही नहीं कुचल देना चाहते थे, बल्कि उनकी अगुवाई करने वाले साहित्य का भी गला घोंट देना चाहते थे। मुंशी दयानारायण निगम के शब्दों में "संकीर्ण हृदय अफसरों का बस चलता तो आज हिन्दुस्तानी साहित्य में प्रेमचन्द का वजूद ही न होता, मगर नदी का प्रवाह किसने रोका है?" प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों से पहले ही असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया था। पुस्तक को छपे 6 महीने भी न बीते थे कि एक दिन कलक्टर का बुलावा पाकर रात में ही 30–40 मील का सफर बैलगाड़ी से तय करके प्रेमचंद ने उसका सामना किया। अभी उनका नाम प्रेमचन्द न पड़ा था। वे असली नाम धनपत्राय बदलकर नवाब राय के नाम से लिखते थे। प्रेमचन्द पर यह पाबन्दी लगा दी गयी कि कलक्टर की आज्ञा के बिना कुछ भी न छपवाएं। 'सोजेवतन' की पाँच सौ प्रतियों में प्रेमचन्द को आग लगाने के लिए मजबूर किया गया।

प्रेमचन्द ने अब नबाब राय नाम छोड़कर प्रेमचन्द नाम से लिखना शुरू किया। पाँच, छः साल में नवाबराय के नाम से जो ख्याति प्रेमचन्द ने पाई थी, वह समाप्त हो गयी और उन्हें नए सिरे से एक नया नाम लेकर साहित्य के मैदान में उतरना पड़ा।

युद्ध काल में ही उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'सेवासदन' लिखा और युद्ध खत्म होने पर 'प्रेमाश्रम' पूरा किया। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड और असहयोग आन्दोलन के छिड़ने पर प्रेमचन्द ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

नौकरी छोड़ देने के बाद वे वापस लमहीं चले आये। केवल साहित्य–सेवा से जीविका न चल पाने के कारण कानपुर के मारवाड़ी विद्यालय में हेडमास्टर नियुक्त हुए। 1921 में 'बड़े घर की बेटीश,

'लाल फीता', 'नमक का दारोगा', 'शान्ति' इत्यादि कहानियों का छोटी–छोटी पुस्तिकाओं के रूप में हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता द्वारा प्रकाशन हुआ।

1922 में अधिकारी के दुर्व्यवहार के कारण प्रेमचन्द ने कानपुर मारवाड़ी विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। कुछ दिन तक काशी विद्यापीठ में अस्थायी नौकरी किये। इन्हीं दिनों 'प्रेमाश्रम' उपन्यास हिन्दी में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इस समय उर्दू में 'बाजारे हुस्न' नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ।

1923 में प्रेमचन्द ने काशी में सरस्वती प्रेस खोला। 'अहंकार', 'संग्राम' – नाटक एवं 'प्रेम पचीसी' (हिन्दी) कहानी संग्रह का प्रकाशन हुआ। इसी समय काशी विद्यापीठ से नौकरी छूट गयी।

'जमाना' पत्र में वह सम्पादन कार्य कर चुके थे। हिन्दी में 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' आदि पत्रों का सम्पादन भी उन्होंने किया। 1927 से 'माधुरी' (लखनऊ) के सम्पादक नियुक्त हुए। उनके समय की माधुरी ने हिन्दी की अपूर्व सेवा की, फिर भी वह उसे राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ देने वाली, नए जनवादी विचारों की समर्थक पत्रिका न बना सकते थे जबकि ऐसी पत्रिका को वह बहुत जरूरी समझते थे। इसीलिए सन् 1930 के अवज्ञा आन्दोलन के शुरू होते–होते उन्होंने 'हंस' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इस तरह 'हंस' का जन्म स्वाधीनता आन्दोलन की प्रगति के साथ हुआ और इसीलिए अंग्रेजी हुकूमत की कोप–दृष्टि भी उस पर पड़ी। प्रेमचन्द बड़ी बहादुरी से अपने प्रिय पत्र 'हंस' के लिए लड़े थे, 'हंस' पर जमानत भी लगी।

1931 में हिन्दी साहित्य परिषद के निमंत्रण पर प्रेमचन्द पटना गये। पाठय–पुस्तकें तैयार करने का काम रुचि के अनुकूल नहीं था। उन्होंने 'जागरण' को अपने हाथ में लिया। 1932 में 'हंस' का स्वदेशांक भी प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द ने 'नवयुग' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण लेख उन्हीं दिनों लिखा था।

सन् 1934 में बम्बई की अजन्ता सीनेटोन कम्पनी के निमंत्रण पर साल भर के कांट्रैक्ट पर वे बम्बई गए। इसके साथ ही 'प्रेम–प्रसून' कहानी संग्रह तथा 'गबन' का उर्दू रूपान्तरण भी प्रकाशित हुआ। 1935 में 'अजन्ता' सीनेटोन को छोड़ वे बनारस वापस आये। 'हंस' को उन्होंने भारतीय साहित्य परिषद के सुपूर्द किया। उन्हीं दिनों 'नवजीवन' एवं 'प्रेम–पीयूष' कहानी संग्रहों का भी प्रकाशन हुआ। आपका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'गोदान' 1936 में प्रकाशित हुआ। उस समय भी वह बीमार ही चल रहे थे। फिर भी वे हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद के वार्षिक जलसे में शरीक हुए। इसके बाद अपनी पत्नी के साथ आगरा चले गये। वहाँ से लौटने के बाद प्रगतिशील लेखक मंच के प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व करने लखनऊ गये। बीमारी की दशा में ही वे 'मंगल सूत्र' उपन्यास के बीसों पृष्ठ लिख चुके थे। हालत नाजुक होती जा रही थी। अतः इलाज के लिए लखनऊ गये किन्तु प्रयत्न विशेष सफल नहीं हुआ था बनारस वापस आ गए।

प्रस्तावित शोध का महत्त्व

प्रेमचन्द एक उपन्यासकार होने के साथ–साथ एक कहानीकार भी हैं। प्रेमचन्द ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। किसी भी लेखक के लिए इतनी कहानियाँ लिख लेना कम नहीं है। इसमें उन कहानियों की संख्या अधिक है जिन्हें कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। लेकिन प्रेमचन्द ऐसे कहानीकार थे जो कलात्मक और वस्तुगत दोनों दृष्टियों से विकसित होते गये। आरम्भिक कहानियाँ अधिकतर लम्बी और वर्णनात्मक हैं जबकि पीछे की कहानियाँ अधिक गठी हुई, संक्षिप्त तथा नाटकीय प्रभाव से सम्पन्न हैं। भावों और विचारों की प्रौढ़ता की दृष्टि से भी आरम्भ और अंत की कहानियों में अंतर आ गया है। भाव के क्षेत्र में प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियाँ भावनाप्रधान और आदर्शवादी हैं।

सामान्यतः प्रेमचन्द के कहानीकार के रुप में विकास को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। प्रारम्भिक अवस्था (1907 से 1920), मध्यावस्था (1920 से 1930), अन्तिम अवस्था (1930 से 1936) माना गया है। इन तीनों अवस्थाओं में प्रेमचन्द ने ऐसी कहानियाँ दी हैं जो हिन्दी की बहुचर्चित कहानियाँ रही है। पहले दौर की कहानियों में 'पंच–परमेश्वर' या 'बड़े घर की बेटी,' दूसरे दौर की कहानियों में से 'शतरंज के खिलाड़ी' या 'एक्ट्रेस' तथा तीसरे दौर की कहानियों में 'कफन' या 'पूस की रात' जैसी कहानियों का श्रेष्ठ कहानियों के तौर पर उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमचन्द को हिन्दी कहानी के न केवल विकास, संवर्धन और पोषण का ही श्रेय है वरन् आज के युग की नयी कहानियों के जन्म का संकेत देने का गौरव भी उपलब्ध होता है। यथार्थ में हिन्दी कहानी की विकास यात्रा के दोनों छोरों पर प्रेमचन्द की मुहर लगी है। इनके अतिरिक्त, कोई अन्य कहानीकार, दो भिन्न युगों की चेतना को कहानी के माध्यम से व्यक्त करने में समर्थ नहीं हुआ। अतः कहा जा सकता है कि कहानीकार प्रेमचन्द, अपने युग के साथ भी थे और उससे आगे भी। वह वर्तमान के आख्यात भी थे और भविष्य के द्रष्टा भी।

भारत के ग्रामीण समाज के साथ व्यापक सहानुभूति, भारतीय अवस्था के प्रति निष्ठा और भारतीयता के साथ प्रतिबद्धता इनकी कहानी कला की सर्वप्रथम विशेषता बनी और यही इनके कहानीकार की लोकप्रियता का मूल आधार भी सिद्ध हुआ। लोक–रस और भारतीयता का स्वर इनकी कहानियों से प्रवाहित होने लगा।

प्रस्तावित शोध के उद्देश्य

1. प्रेमचन्द ने स्त्रियों की पराधीन दशा की विविध समस्याओं का विस्तार से विवेचन किया है।
2. प्रेमचन्द की रचनाओं में समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है।
3. प्रेमचन्द ने ग्रामीण समाज का यथार्थ पूर्ण सजीवता के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है।

4. प्रेमचन्द की रचनाओं में भारत के ग्रामीण समाज साथ व्यापक सहानुभूति भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रति निष्ठा रचनाओं में उजागर हुई हैं।
5. प्रेमचन्द की कहानी साहित्य की अप्रतिम विशेषता है। प्रेमचन्द ने भारतीय गरिमा पुरुषों के अपरिमेय साहस, नारियों के त्याग उनके प्रेम देशभक्ति और आदर्शों के लिए महिमा गायन हेतु ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं।

प्रस्तावित शोध के निष्कर्ष

रचनाकार ने सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक समस्याओं को उठाया है, और उसक उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। इस रचना के पूर्वार्द्ध में उन्मुक्त कल्पना, चमत्कार—पूर्ण कार्य व्यापार तथा अद्भुत घटनाओं का समावेश है। समस्त कथावस्तु की धुरी जगदीशपुर की रानी 'देवप्रिया' राजा विशाल सिंह, जमींदार राजा के शोषण के विरुद्ध संघर्षोन्मुख क्रान्तिकारी किसान और चक्रधर आदि हैं। इस उपन्यास में राजा एवं रानियों की विलासिता का चित्रण, राजनीतिक नेताओं की अवसरवादिता का उद्घाटन और किसानों मजदूरों की अन्याय—विरोध की दशा में निरन्तर विकसित दृ ढ़ता इत्यादि का प्रतिपादन किया है। वस्तु विन्यास कौशल की दृष्टि से, इस रचना को कमजोर नहीं कहा जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल, आर० सी० भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली, 2000
- अमृतराय : 'हंस' : प्रेमचन्द स्मृति अंक, मई 1937.
- अमृतराय (सं.) : प्रेमचन्द स्मृति, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रेमचन्द स्मृति दिवस, 1959.
- अमृतराय : प्रेमचन्द की प्रासंगिकता, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, फरवरी, 1085.
- अमृतराय : प्रेमचन्द कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962.
- अवस्थी, ज्ञान : हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्या, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1979.
- अवस्थी, ओम : प्रेमचन्द के नारी पात्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1962.
- आदर्श, ब्रजभूषण सिंह हिन्दी के राजनतिक उपन्यासों का अनुशीलन, रचना प्रकाश, इलाहाबाद, 1970